International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 26-01-2026, Accepted: 25-02-2026, Published: 12-03-2026
Volume 12, Issue 1, 2026, Page No. 224-226

वैश्वीकरण के दौर में बदलते जीवन मूल्यों का आलोचनात्मक विश्लेषण (विशेष संदर्भः रेहन पर रग्घू)

डॉ. सगीर अहमद
पूर्व शोधार्थी, हिंदी विभाग, जामिया मिल्लिया इस्लामिया नई दिल्ली, भारत

सारांश
'रेहन पर रग्घू' उपन्यास में सामान्य तौर पर उन सभी परिस्थितियों का चित्रण किया गया है जो कहीं न कहीं वैश्वीकरण की आंधी से प्रभावित हुआ है, चाहे वह बदलती संस्कृति या परंपरा और आधुनिकता का द्वंद्व हो, पारिवारिक रिश्ते का छीजपन अथवा उसे जबरन पकड़े रहने की कोशिश हो, गांव की बदलती राजनीति या गांवों में धीरे–धीरे शहरीकरण का प्रभाव हो, जातियता का टूटता परिदृश्य हो, संबंधों में मूल्यविहीनता हो, मातृभूमि (जहां बच्चे पैदा हुए, खेले और बड़े हुए) के प्रति उदासीनता, पैसे के पीछे भागती जिंदगी, बदलती सामाजिक स्थिति, शिक्षा का निजीकरण, विदेशी संस्कृति से प्रभावित प्रेम विवाह का प्रचलन, लिव–इन– रिलेशन का रिश्ता, पैसों की खातिर बिखरता परिवार, शॉर्टकट तरीके से पैसे कमाने वाली व्यक्तिगत जिंदगी, संबंधों में मूल्यविहीनता, बढ़ता यांत्रिकीकरण, छोटे कस्बाई शहरों में बदलती जिंदगियां और वृद्धावस्था का दंश, वृद्धावस्था के दौरान टूटते सारे भ्रम, एवं असमंजस की स्थिति को बड़े ही सीमित कलेवर के उपन्यास में प्रोफेसर रघुनाथ के माध्यम से काशीनाथ सिंह ने पकड़ा है, और साथ ही अपनी पैनी दृष्टि उपन्यास में बनाए रखी है।

मूल शब्दः वैश्वीकरण, शहरीकरण, उपभोक्ता वादी संस्कृति, बाजारवाद, अमेरिकीकरण, मूल्यविहीनता, यांत्रिकीकरण, कस्बाई शहर, लिव–इन–रिलेशन, निजीकरण, निरर्थकता बोध, संयुक्त परिवार, युवा पीढ़ी।

"अगर काशी अस्सी मेरा नगर था तो 'रेहन पर रग्घू' मेरा घर है– और शायद आपका भी।" वैश्वीकरण के दौर में बदलते जीवन मूल्यों की भविष्यवाणी वहीं सजग कथाकार कर सकता है जिसने समय, समाज, व्यक्तियों एवं चितवृत्तियों को गहराई से समझा है। पुष्पाल सिंह इस संदर्भ में लिखते हैं–"भूमंडलीकरण ने हमारी जीवन पद्धति और सोच को जिस रूप से बदलकर रख दिया है, जीवन मूल्यों और मान्यताओं में जो निर्ममता और ध्वंस की स्थिति आई है, उसे उपन्यास बड़ी गहराई से उकेरा है।"[1]

यदि पिछले कुछ दशकों की बात की जाए और औपन्यासिक कलेवर को देखा जाए तो कमोवेश भूमंडलीय स्थितियां और उससे उत्पन्न ऊहा–पोह निरंतर उपन्यासों में दिखाई देता है और इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि 'रेहन पर रग्घू' उपन्यास उससे अछूता रहा है, बल्कि उसमें भी जबरदस्त तरीके से उसका रूपायन हुआ है। इस संदर्भ में पुष्पपाल सिंह लिखते हैं–"पिछली शती के अंतिम दो दशकों से हमारे देश में जो भूमंडलीय स्थितियां बनती चली गई साहित्य की चिंता के केंद्र में वही प्रमुखता से रुपायित हुई है।"[2]

जीवन के यथार्थ धरातल पर उतरकर जिस प्रकार 'रेहन पर रग्घू' उपन्यास में वर्तमान वैश्वीकृत समाज की कड़वी सच्चाई को दिखाया है, पाठक उपन्यास पढ़ते–पढ़ते सहम सा जाता है, कि कहीं यहा घटना कमोवेश मेरे ही या आगे आने वाले जीवन की तो नहीं है। डॉक्टर रामचंद्र तिवारी के शब्दों में–"काशीनाथ जी अपने कथा साहित्य में यथार्थ जीवन की विडंबनाओ का रेशा–रेशा अलग करके प्रस्तुत करने वाले रचनाकार हैं।"[3]

कथाकार सिर्फ कथाकार ही नहीं होता है वह सच्चा समाज दृष्टा भी होता है। लेखक ने जिस प्रकार से मास्टर (प्रोफेसर) रघुनाथ के माध्यम से वैश्वीकृत होते गांव पल–पल छीजते रिश्ते आधुनिकताके दौर में क्षणिक बनते बिगड़ते रिश्ते, अजनबियत, अकेलापन, अपराध बोध, नई और पुरानी पीढ़ी के साथ सामंजस्य, गांव और शहर के बीच अधर में लटकते मोह, शिक्षा का निजीकरण, अंतर्जातीय बनते संबंध, शॉर्टकट से पैसा कमाने वाली जिंदगी, पारिवारिक रिश्तों में हल्कापन, मातृभूमि के प्रति विछोह, जीवन के प्रति निरर्थकताबोध आदि को बड़ी गहराई से चित्रित किया है। पुष्पपाल सिंह लिखते हैं– "कथा साहित्य की प्रवृत्ति तात्कालिक समस्याओं को अधिक तीव्रता से पकड़ने की होती है इसलिए उनमें अपने समय की चिंताएं और प्रश्न अधिक गहनता से चित्रित विश्लेषित होते हैं।"[4]

71 साल के बूढ़े रघुनाथ ने इस बदलती वैश्वीकरण की सच्चाई को बड़ी गहराई से देखा था। जिस पर उन्हें भी यकीन नहीं हो रहा था कि इतना सब कुछ अचानक बदल जाएगा और वह इस बदलते हुए परिवेश को देख भी सकेंगे। काशीनाथ सिंह लिखते हैं–"एक छोटे से गांव से लेकर अमेरिका तक फैल जाओगे? चौके में पीढ़ा पर बैठकर रोटी प्याज नमक खाने वाले तुम अशोक विहार में बैठकर लंच और डिनर करोगे।"[5]

वैश्वीकरण की आंधी ने व्यष्टि और समष्टि दोनों को काफी प्रभावित किया है, और यह प्रभाव वृद्धों के ऊहापोहात्मक स्थिति में ज्यादा मुखर होती दिखाई देती है। जब रघुनाथ का बड़ा बेटा संजय अमेरिका के कैलिफोर्निया में सेटल हो जाता है और छोटा बेटा पढ़ाई के नाम पर नोएडा जाकर किसी विधवा महिला के साथ रहने लगता है, और उनकी बेटी एक दलित सुदेश भारती के साथ रहने का मन बना लेती है तो रघुनाथ की विक्षिप्त सी स्थिति हो जाती है, और काशीनाथ सिंह इस विक्षिप्तता का चित्रण करते हुए लिखते हैं जैसे कि वह अपनी पत्नी शीला के माध्यम से सारे जमाने को सुनाना चाहते हैं कि आजकल के बच्चे और एक हमारा समय था उसमें काफी अंतर आ गया है। "शीला इन सब चीजों के सहारे जिंदगी तो काटी जा सकती है!" सहसा उनकी आवाज भारी और उदास हो गई– शीला हमारे तीन बच्चे हैं, लेकिन पता नहीं क्यों, कभी–कभी मेरे भीतर ऐसी हूक उठती है जैसे लगता है मेरी औरत बांझ है और मैं निःसंतान पिता हूं! मां और पिता होने का सुख नहीं जाना हमने! हमने ना बेटे की शादी देखी, ना बेटी की! ना बहू देखी, न होने वाला दामाद देखा। हम ऐसे अभागे मां–बाप हैं जिसे उनका बेटा अपने विवाह की सूचना देता है, और बेटी धौंस देती है कि इजाजत नहीं दोगे तो न्योता नहीं दूंगी।"[6]

कथाकार काशीनाथ सिंह ने वैश्वीकरण के दौर में बदल रहे तमाम ताने–बाने को बड़ी गहराई से चित्रित किया है। उपन्यास में कई ऐसे प्रसंग आए हैं जहां पर यह भाव दिखता है। वह

लिखते हैं–"काफी समय लग गया रघुनाथ को घर पर रहने की आदत डालने में, वे रहे तो गांव में ही लेकिन गांव के नहीं रहे। गांव ही वह नहीं रहा तो वह गांव के क्या रहते? पहाड़पुर जाना जाता था अपने बगीचों, बँसवार और पोखर के कारण– जहां चिड़ियों की चहचहाहट और गायों भैंसों के रंभाने और बैलों की घंटियों की टनटनाहट से बस्तियां गूंजती रहती थी लेकिन अब पेड़ कट गए थे बँसवार साफ हो गई थी और पोखर धान के खंधो में बंट गई थी।"[7] लेकिन इस आने वाली सच्चाई को जो कि वैश्विक आंधी के रूप में चल रही है रघुनाथ किसी भी प्रकार स्वीकारने के लिए तैयार नहीं हैं। उन्हें अपने खेत, अपने बाग, अपने गांव से बेहद लगाव है। जब गांव के लोग रघुनाथ को अकेला पाकर उनकी जमीनों को गिद्ध की भांति नजर गड़ाकर हड़पना चाहते हैं तो इन सारी बातों को अपने बेटों को बताते हैं किंतु बेटे उनकी बातों पर ध्यान न देकर उल्टे उन्हें ही समझाने लगते हैं तब रघुनाथ कहते हैं–"तुम करोड़ों कमाओगे लेकिन रुपैया और डॉलर नहीं खाओगे। भगवान ना करें कि वह दिन आए जब बैंक चावल दाल के दाने बांटे।" उन्होंने जांघ पर मुक्का मारा शीला की ओर ताकते हुए–"साले तुम लोग बड़े हुए हो अपनी मां का दूध पीकर। और तुम्हारी मां की महतारी है यह जमीन। चावल, दाल, गेहूं, तेल, पानी, नमक इसी जमीन के दूध हैं।"[8]

वास्तव में देखा जाए तो एक पीढ़ी जो मरजाद की खातिर अपने और पुरखों की जमीन को किसी तरह ना तो छोड़ना चाहती है और ना ही खोना। लेकिन नई पीढ़ी नौकरी और जीवन की आपाधापी में भागने में मशगूल है। जिसको देखकर मास्टर रघुनाथ को पीड़ा हो रही है। शंभूनाथ के शब्दों में–"आज उपन्यास समाज में तरह–तरह से आकार ले रहे हैं, उनमें मनुष्यता का बदलता स्वभाव दिखाई पड़ता है। यह भी देखा जा सकता है, समाज में एक ही मानवीय रूप नहीं है।"[9]

आज वैश्वीकृत समाज और ऑफिसवादी संस्कृति ने युवाओं को कितना यांत्रिक बना दिया है जिसकी कल्पना ही नहीं की जा सकती है। जिंदगी की भाग–दौड़ और पैसों का जोड़ तोड़ तमाम तरह की चीजें सामान्य मनुष्य के जीवन में आम हो गई हैं। पुष्पाल सिंह लिखते हैं–"वैश्वीकरण एक प्रकार से अमेरिकीकरण है। जो सारे राष्ट्रों की स्थानिक संस्कृति जातीय चेतना को पूरी तरह लील कर अपने रंग में रंग डालने की बड़ी भारी सफल कूटनीति है। जिसके कारण पूरा विश्व उसकी चपेट में आ चुका है।"[10]

वैश्वीकरण की आंधी को लेखक 71 साल के मास्टर रघुनाथ के माध्यम से बहुत करीब से देखा है। उन्होंने यह देखा कि कैसे रिश्ते बदल रहे हैं, जातीयता सिमट रही है गांव अब पुराना गांव जहां सिर्फ बबुआन की चलती थी सब बदल गया है, और बदलने की प्रक्रिया में है। "अंबेडकर गांव हो जाने के बाद पहाड़पुर तेजी से बदल रहा था! गांव में बिजली आ गई थी, केबुल की लाइने बिछ गई थीं, अखबार लेकर हाकर आने लगे थे। कुछ घरों में टी.वी. पंखे भी लग गए थे! छौरे पर खड़ंजा बिछा दिया गया था।"[11]

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक, मास्टर रघुनाथ के माध्यम से उन पीड़ा परक संबंधों को भी उभारा है जो बदलते वैश्वीकृत समाज में पैसों के पीछे भागने की प्रबलवती लालसा जिसको कभी रघुनाथ ने अपने खून से सींचा था आज वह कैसे हाथ से निकलकर भाग रहे हैं और वह मूकदर्शक की तरह देख रहे हैं। लेखक के शब्दों में–"बच्चों को पढ़ाया भी तो खेत रेहन पर रखकर और कॉलेज से लोन लेकर।"[12] रघुनाथ का बड़ा लड़का प्रोफेसर सक्सेना की बेटी से इसलिए शादी करता है ताकि वह अमेरिका की बहुराष्ट्रीय कंपनी कैलिफोर्निया जा सके। पुष्पाल सिंह लिखते हैं– "भूमंडलीकरण द्वारा आरोपित बाजारवाद उपभोक्तावादी मूल्य दृष्टि पैसे की बढ़ती लालसा और आकाशी स्वप्नों को पाने की मृगतृष्णा को बड़ी गहरी चिंता और सरोकार से उपन्यास का कथा बनाया गया। इन सब स्थितियों ने जिस रूप में संबंधों की उष्मा को ले लिया, माता–पिता तथा पिता–पुत्री के बीच दूरियां आकर वृद्धावस्था का दुर्वह रूप समाज देख रहा है, उस सब पर उपन्यासों ने निरंतर अपनी दृष्टि रखी है।"13

काशीनाथ सिंह अपने उपन्यास में निरंतर बदलती वैश्वीकृत परिवेश को बड़ी गहराई से देखा और परखा है। और वे बड़ी पीड़ा के साथ इसका चित्रण किया है कि कैसे अब गांवों में शहरों का प्रवेश नई बसी कॉलोनी के वासियों में किस प्रकार उपभोक्तावाद और बाजारवाद निरंतर प्रवेश करता जा रहा है। काशीनाथ सिंह के शब्दों में–" गांव में वह सब पहुंच रहा था धीरे–धीरे जो शहर में था– बिजली भी, नल भी, फ्रिज भी, फोन भी, टी.वी. भी, अखबार भी लेकिन वह मजा नहीं था जो शहर में था।"[14] प्रस्तुत उपन्यास में जिस प्रकार से एक साथ काशीनाथ सिंह बदलते परिवेश को देखा है, वह अन्यत्र कहीं नहीं दिखता मात्र 163–64 पेज में उन्होंने जीवन के सर्वांगीण पक्षों को क्रमबद्ध तरीके से चित्रित किया है, चाहे वह गांव का शहरीकरण में बदलना हो या बच्चों का पैसों के आगे पुरानी पीढ़ी से विछोह सब एक साथ चित्रित हुए हैं। उपन्यास के अंत तक जब पाठक पढ़ते हुए आते हैं तब उसे ऐसा लगता है जो कई वर्षों से मास्टर रघुनाथ अपने मन में संजोए रखे थे, कि मेरे सब बच्चे कहीं ना कहीं सेलेक्ट होकर गांव घूमने आएंगे तो सब कुछ कितना अच्छा लगेगा। लेकिन यह भ्रम मात्र कुछ ही क्षणों में टूटता हुआ दिखाई देता है। काशीनाथ सिंह मास्टर रघुनाथ की व्यथा का चित्रण करते हुए लिखते हैं कि–"जब वे (रघुनाथ) अशक्त हो जाएंगे तो ये बच्चे उनकी आंखें बनेंगे, उनके हाथ पांव बनेंगे। कि वे बीमार होंगे तो यही बच्चे उनकी सेवा करेंगे दवा, दारू करेंगे, अस्पताल में भर्ती कराएंगे। कि मरने लगेंगे तो मुंह में गंगाजल तुलसी दल डालेंगे, अर्थी सजाएंगे शमशान ले जाएंगे क्रिया कर्म करेंगे।"[15] लेकिन होता है इसके विपरीत जिसकी वे कल्पना भी नहीं कर रहे थे। ये वही मास्टर रघुनाथ थे जिन्होंने अपने बच्चों के साथ ही गांव के बच्चों से भी स्नेह रखते हुए पढ़ाई की खातिर कुछ पैसों से मदद कर देते थे। किंतु वही पीढ़ी अब उन्हें पहचानने से इनकार कर रही है जिसके लिए उन्होंने सारा कुछ किया। काशीनाथ सिंह लिखते हैं– "रघुनाथ पहाड़पुर गांव के अकेले पढ़े–लिखे आदमी। डिग्री कॉलेज में अध्यापक। दुबले पतले लंबे छरहरे बदन के मालिक। शुरू के 10 वर्षों तक साइकिल से आते–जाते थे, बाद में स्कूटर से पिछली सीट पर कभी बेटी बैठती थी, बाद के दिनों में बेटे। कभी एक, कभी दोनों।"[16] उपन्यास के अंत तक आते–आते संयुक्त परिवार का पूरा ढांचा टूटता हुआ नजर आता है। कि जिसने अपने परिवार के लिए सब कुछ किया वहीं अब उन्हें धमकी दे रहे हैं, बेटे ताना मार रहे हैं, बेटी अंतर्जातीय विवाह की धमकी दे रही है। पुष्पपाल सिंह लिखते हैं– "वर्तमान में संयुक्त परिवार का पारंपरिक ढांचा पूरी तरह विशृंखलित हो गया है। वर्तमान की सारी आर्थिक प्रगति, समृद्धि के बीच मनुष्य के जीवन की निरर्थकता का बोध जिस रूप में जीवन संध्या दे रही है और संबंधों की सारी ऊष्मा के इस क्षरण का पीड़ा भरा सशक्त आख्यान हिंदी उपन्यास में हुआ है।"[17]

वैश्वीकरण की आंधी ने सिर्फ संस्कृतियों को ही नहीं प्रभावित किया है बल्कि संपूर्ण तरीके से रोटी–बेटी के संबंधों को भी काफी प्रभावित किया है। आधुनिकता व उपभोक्तावादी संस्कृति का चोला पहन कर आया आंधी व्यक्तिगत रूप से सबको मुखर किया है। हर कोई इस बहती आंधी में प्रश्न चिन्ह के समान खड़ा है। जिसको पुरानी पीढ़ी आसानी से पचा नहीं पा रही है। रघुनाथ की बेटी सरल जब यह देखी है कि लगभग 6–7 साल

से मेरे लिए शादी के लिए लड़का ढूंढा जा रहा है और वह नहीं मिल रहा है। कारण है भारी भरकम दहेज। तब सरला मुखर रूप से किसी दलित सुदेश भारती जो की मिर्जापुर का एसडीएम है। जाति से चमार है, का नाम बताती है और आदेशात्मक रूप से कहती है कि मैं उसी से शादी करूंगी। तो रघुनाथ को काटो तो खून नहीं जैसी स्थिति हो जाती है, और यह सुनकर रघुनाथ आवाक होकर समाज की उधेड़बुन की कल्पनाओं में खो जाते हैं। वह कहते हैं कि लाला तक की तो गनीमत थी। अब दलित, और प्रश्न चिन्हित हो जाते हैं। काशीनाथ सिंह इस अप्रत्याशित घटना का चित्रण करते हुए लिखते हैं–" रघुनाथ को काटो तो खून नहीं यही वह सुदेश भारती था। जिसका जिक्र सरला ने किया था। इसी से उसने शादी करने की बात की थी! अगर वह सचमुच कर ले तो गनपत जो उसका हल जोतता है और उनके उनके आगे खड़ा रहता है या माचिया पर बैठता है, उनका रिश्तेदार होगा! खरपत जो गनपत का बाप है, उनका समधी होगा और गले मिलेगा! उनके साथ खटिया पर बैठेगा और दामाद के बाप की हैसियत से ऊंचा होगा उनसे!"[18]

'रेहन पर रग्घू' में काशीनाथ सिंह उन परिस्थितियों का भी विश्लेषण करते हैं जिनके द्वारा वैश्वीकृत राजनीति ने गांवों का चरित्र बदल कर रख दिया है। अगड़े पिछड़ों की राजनीति और विभिन्न राजनीतिक दलों की गांवों में पैठ ने और चेतना ने परंपरागत स्वरूप को बदल दिया है। काशीनाथ सिंह लिखते हैं–" हलवाहों ने हड़ताल की थी ऐसे ही वक्त पर–खेत के जोत बन्नी और केड़ा को लेकर। हाड़ौरी (हल जोतने की मजदूरी) और खलिहानी को लेकर बाबा आदम के जमाने से चले आ रहे रेट पर काम करने से इनकार कर दिया था। हलवाहों ने. चरनी पर बंधे मवेशी गोबर मूत में ही उठ बैठ रहे थे और पूरा ठाकुरान गंदगी से बजबजा रहा था!"[19]

अंततः प्रस्तुत उपन्यास में देखा जा सकता है की कितनी सूक्ष्म दृष्टि एवं बड़ी गहराई से संपूर्ण बदलती वैश्विक प्रवृत्ति का रेखांकन किया है।

संदर्भ

1. पुष्पाल सिंह, भूमंडलीकरण और हिंदी उपन्यास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 2012, पृष्ठ 103.
2. पुष्पपाल सिंह, 21वीं शती का हिंदी उपन्यास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 2016, पृष्ठ 43.
3. डॉ रामचंद्र तिवारी, हिंदी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, संस्करण 2009, पृष्ठ 433.
4. पुष्पपाल सिंह, 21वीं शती का हिंदी उपन्यास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 2016, पृष्ठ 43.
5. काशीनाथ सिंह, रेहन पर रग्घू, राजकमल प्रकाशन दरियागंज नई दिल्ली, पांचवा संस्करण 2016, पृष्ठ 13.
6. 'वही', पृष्ठ 89.
7. 'वही' पृष्ठ 61.
8. 'वही' पृष्ठ 85.
9. शंभूनाथ सिंह, हिंदी उपन्यास राष्ट्र और हाशिया, वाणी प्रकाशन दरियागंज नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2016, पृष्ठ 233.
10. पुष्पपाल सिंह, भूमंडलीकरण और हिंदी उपन्यास, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पहला संस्करण 2012, पृष्ठ 7.
11. काशीनाथ सिंह, रेहन पर रग्घू, राजकमल प्रकाशन दरियागंज नई दिल्ली, पांचवा संस्करण 2016, पृष्ठ 61.
12. 'वही' पृष्ठ 21.
13. पुष्पपाल सिंह, भूमंडलीकरण और हिंदी उपन्यास, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पहला संस्करण 2012, पृष्ठ 137.
14. काशीनाथ सिंह, रेहन पर रग्घू, राजकमल प्रकाशन दरियागंज नई दिल्ली, पांचवा संस्करण 2016, पृष्ठ 104.
15. 'वही' पृष्ठ 149.
16. 'वही' पृष्ठ 16.
17. पुष्पपाल सिंह, 21वीं शती का हिंदी उपन्यास, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 2016, पृष्ठ 46.
18. काशीनाथ सिंह, रेहन पर रग्घू , राजकमल प्रकाशन दरियागंज नई दिल्ली, पांचवा संस्करण 2016, पृष्ठ 69.
19. 'वही' पृष्ठ 64.